श्रीध्रुवदासजी कृत

"श्री वृन्दावन-सत लीला"

(भाषानुवाद सहित)
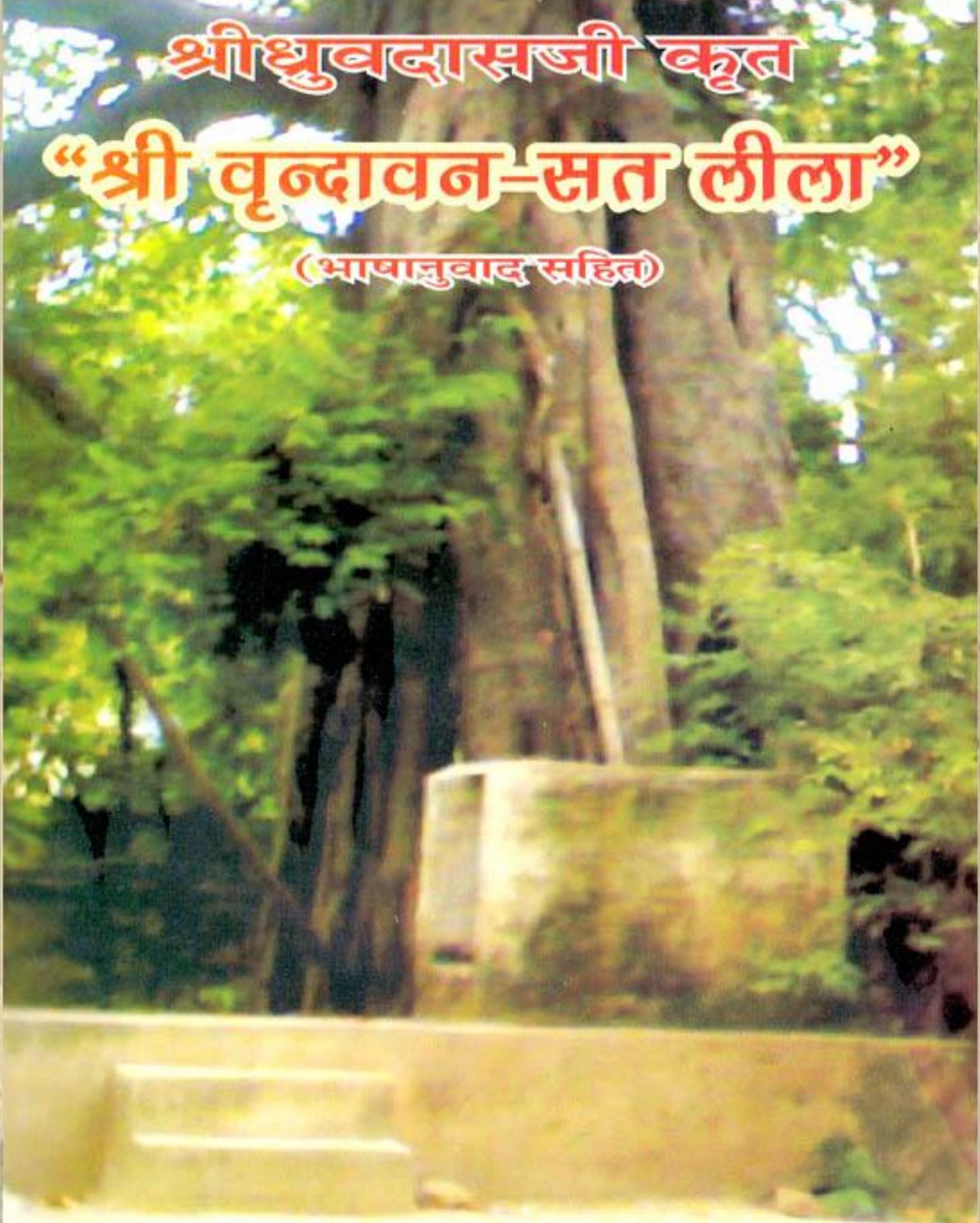
दर्शन : श्री मदनटेर (वृन्दावन)

निवेदन

सर्वाद्य रसिक जन वन्दित चरण, रसिकाचार्य शिरोमणि, वंशीवतार श्री श्री हित हरिवंश चंद्र महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय में वाणी साहित्य की प्रचुरता है। रसिक महानुभावों ने निज भाव भावना को सिद्ध कर जिस परम रस का आस्वादन किया, वाणी ग्रन्थ उसी रस का सहज सरल उद्गलन हैं। इसी परंपरा में रसिक भूषण सन्त श्री ध्रुवदास जी की वाणी श्री राधावल्लभीय सम्प्रदाय का भाष्य ग्रन्थ है। इस वाणी का सर्वाधिक महत्व यह है कि यह स्वयं श्री रास रसेश्वरी, नित्य निकुञ्जेश्वरी प्रिया श्री राधा द्वारा प्रदत्त प्रीति प्रसाद है। अत: यह रस गिरा स्वत: सिद्ध एवं सर्वरसिक जन पोषिणी तो है ही, अनेकानेक रसिक महानुभाव इस वाणी के अनुशीलन द्वारा ही सैद्धान्तिक मर्म को हृदयङ्गम कर उपासना सिद्ध करते आ रहे हैं। अत: यदि कहा जाए कि हित रस तरु को श्रीध्रुवदास जी ने बयालीस लीला के वर्णन द्वारा सुफलित किया है तो कोई अतिशयोक्ति ना होगी। इसी ग्रन्थ रुपी भाव मंजूषा में एक अति प्रिय और महामधुर भाव रत्न ''श्री वृंदावन सत लीला'' है, जिसका पठन एवं श्रवण मात्र सहज रुप से श्री वृंदावन अधिकारिणी का कृपा पात्र बना देता है, यह मेरा निजी अनुभव है। स्वयं श्री हिताचार्य महाप्रभु ने श्री मद् सुधा निधि में कहा है कि :-

''क्वासौ राधा निगम पदवी दूरगा कुत्र चासौ,

कृष्णस्तस्या: कुचकमलयोरन्तरैकान्तवास:।

क्वाहं तुच्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्यकर्मा,
यत्तन्नाम स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य।।

श्रीराधामाधव युगल के मधुरातिमधुर नित्य केलि रस का चिंतन तभी हो सकता है जब सर्वप्रथम सम्यक रूप से श्री वृन्दावन का स्वरूप हृदय में आए और यह स्वयं श्री वृन्दावन की कृपा से ही सम्भव है।

यह हित सौरभ सुवासित वाणी पुष्प रसिक समाज को आनन्दित करे यही श्रीहितमहाप्रभु के श्री चरण कमलों में प्रार्थना है। अभिलाषा है।

श्री हित रसिक पद रजाश्रित,
-हित अम्बरीष-

मंगलाचरण
प्रीतिरिवमूर्त्तिमती रस सिन्धोः,
सार सम्पदिव विमला।
वैदग्धीनां हृदयं काचन,
वृन्दावनाधिकारिणी जयति॥

श्रीहित वृन्दावन धाम रस रीति प्रवर्तक वंशी अवतार
अनन्त श्री गोस्वामी श्री हित हरिवंशचन्द्र जू महाप्रभु

निभृत निकुञ्ज विलासी लाड़िले
श्री राधावल्लभ लाल जी महाराज

रसिक भूषण सन्त श्रीहित ध्रुवदास जी महाराज

श्री राधावल्लभो जयति

श्री हित हरिवंशचन्द्रो जयति

श्री वृंदावन-सत लीला

प्रथम नाम हरिवंश हित, रट रसना दिन रैन।
प्रीति रीति तब पाइयै, अरु वृंदावन ऐन।।1।।

श्रीहितध्रुवदास जी कहते हैं - हे जिह्वा ! तू सर्वप्रथम प्रेम मूल श्री हित हरिवंश नाम ही सतत रट, इसी परम मधुर नाम का ही गान कर। क्योंकि इस नाम की रटन के फलस्वरूप ही श्री हित युगल की अद्भुत प्रीति रीति और श्री वृंदावन रूपी विश्राम प्राप्त होगा।

चरन सरन हरिवंश की, जब लगि आयौ नाहिं।
नव निकुंज निजु माधुरी, क्यौं परसै मन माहिं।।2।।

जब तक प्रकट प्रेम स्वरूप श्री हरिवंश के श्री चरणों की शरण न ली जाए, तब तक नित्य निकुंज की नित्य नवायमान रस माधुरी को मन स्पर्श भी कैसे कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता।

वृंदावन सत करन कौं, कीन्हौं मन उत्साह।
नवल राधिका कृपा बिनु, कैसे होत निबाह।।3।।

श्रीहितध्रुवदास जी कहते हैं-कि मेरे मन ने ''श्री वृंदावन सत'' ग्रंथ रूपी श्री वृन्दावन का गुणगान करने का उत्साह तो किया है परन्तु नवल किशोरी श्री राधिका के कृपा कटाक्ष के बिना कैसे ये आशा पूर्ण हो सकती है।

यह आसा धरि चित्त में, कहत जथा मति मोर।

वृन्दावन सुख रंग कौ, काहु न पायौ ओर।।4।।

अतः उन्हीं श्री बनराज रानी की कृपा की आशा अपने चित्त में रखकर यथामति श्री वृंदावन की महिमा वर्णन करता हूँ, क्योंकि श्री वृंदावन की माधुरी अनन्त है जिसका आज तक किसी ने ओर छोर नहीं पाया है।

दुर्लभ दुर्घट सबनि तैं, वृन्दावन निजु भौन।

नवल राधिका कृपा बिनु, कहिधौं पावे कौन।।5।।

यह परम रसमय दिव्य श्री वृंदावन जो श्री राधामाधव युगल का निज धाम है, सबसे दुर्लभ और अगम अगोचर है। नित्य निकुंजेश्वरी श्री राधाकी कृपा बिना कोई कदापि इसे प्राप्त नहीं कर सकता।

सबै अंग गुन हीन हौं, ताकौ जतन न कोई।

एक किशोरी कृपा तैं, जो कछु होइ सो होई।।6।।

और मैं तो वैसे ही सब प्रकार से गुणहीन एवं सर्वथा असमर्थ हूँ, करूणा धाम श्री किशोरी जी की कृपा से ही जो होना है सो होगा।

सोऊ कृपा अति सुगम नहिं, ताकौ कौन उपाव।

चरन सरन हरिवंश की, सहजहिंबन्यौ बनाव।।7।।

परन्तु उन श्री किशोरी जी की कृपा प्राप्त करने का भी कौन सा उपाय है, क्योंकि वह कृपा भी तो सहज सुलभ नहीं है। पर श्रीहित ध्रुवदास जी कहते हैं कि श्रीहरिवंश के श्री चरणों की शरण में जाने से यह दुर्लभ कृपा सहज सुलभ हो गई है।

हरिवंश चरन उर धरनि धरि, मन वच कै विस्वास।

कुँवरि कृपा ह्वै है तबहि, अरु वृन्दावन वास।।8।।

अत: यदि मनसा वाचा कर्मणा श्री हरिवंश के शरणागत होकर, अपनी हृदय भूमि पर भाव से उनके चरण युगल धारण करता हूँ। तभी नित्य किशोरी श्री राधा कृपा करेंगी और श्री वृन्दावन वास सुलभ होगा।

प्रिया चरन बल जानि कै, बाढ़्यौ हिये हुलास।

तेई उर में आनि हैं, श्री वृन्दा विपिन प्रकाश।।9।।

प्रिया श्री राधा के श्री चरणों की कृपा एवं सामर्थ्य जानकर मेरे हृदय में हर्षोल्लास बढ़ रहा है कि इन्हीं की कृपा से मेरे हृदय में श्री वृन्दावन का रस रंग प्रकाशित होगा।

कुँवरि किसोरी लाड़िली, करुनानिधि सुकुमारि।

वरनौं वृन्दा विपिन कौं, तिनके चरन सँभारि।।10।।

करुणाधाम, कृपालु किशोरी कुँवरि श्री राधा प्यारी के श्री चरणों का सप्रेम स्मरण करते हुए श्री वृन्दावन का वर्णन करता हूँ।

हेममई अवनी सहज, रतन खचित बहु रंग।

चित्रित चित्र विचित्र गति, छबि की उठत तरंग।।11।।

श्री वृंदावन की भूमि सहज स्वरुप से ही स्वर्णमयी है जिसमें नाना रंगों के अद्भुत रत्न जड़े हैं। अद्भुत भांति से विलक्षण चित्र चित्रित हैं जिनमें सौंदर्य की तरंगे सतत उठती रहती है।

वृंदावन झलकनि झमकि, फूले नैन निहारि।

रवि ससि दुतिधर जहाँ लगि, ते सब डारे वारि।।12।।

श्री वृन्दावन की यह अनिर्वचनीय कांति एवं शोभा भावपूर्ण नेत्रों से देखने पर अनुभव होता है कि सूर्य चन्द्रमा जैसे जितने भी ज्योति धारक हैं, सब वृन्दावन पर न्योछावर हैं।

वृन्दावन दुतिपत्र की, उपमा कौं कछु नाहिं।
कोटि-कोटि बैकुण्ठ हूँ, तिहि सम कहे न जाहिं।।13।।

श्री वृंदावन के एक पत्ते की शोभा की समता कोटि-कोटि बैकुण्ठ भी नहीं कर सकते। अर्थात् श्री वन का सौंदर्य अनुपम, अतुल्य है।

लता-लता सब कल्पतरु, पारिजात सब फूल।
सहज एक रस रहत हैं, झलकत यमुना कूल।।14।।

यहाँ की एक-एक लता कल्प वृक्ष है, एक-एक पुष्प पारिजात है जो श्री यमुना जी के किनारे सतत एक रस झिलमिलाते रहते हैं, अर्थात् इनकी शोभा कभी मंद नहीं होती।

कुंज-कुंज अति प्रेम सौं, कोटि-कोटि रति मैन।
दिनहिं सँवारत रहत हैं, श्री वृंदावन ऐंन।।15।।

वृंदावन की एक-एक कुंज को कोटि-कोटि रति एवं कामदेव महा प्रेम में भरकर नित्य निरन्तर सजाते-संवारते रहते हैं।

विपिनराज राजत दिनहिं, बरषत आनन्द पुंज।
लुब्ध सुगन्ध पराग रस, मधुप करत मधु गुंज।।16।।

सर्वोत्कृष्ट श्री वृंदावन परमानन्द की वर्षा करता हुआ सर्वोपरि विराजमान है जहाँ दिव्य सुगंध एवं पुष्पों के पराग से आकर्षित भ्रमर मधुर-मधुर गुंजार करते रहते हैं।

अरुन नील सित कमल कुल, रहे फूलि बहुरंग।
वृन्दावन पहिरैं मनौ, बहु विधि वसन सुरंग।।17।।

लाल नीले एवं श्वेत कमलों के समूह एवं नाना प्रकार के पुष्प ऐसे खिले हैं जिन्हें देखकर लगता है मानों श्री वृंदावन ने नाना प्रकार के सुन्दर रंगों के वस्त्र पहन रखे हों।

हित सौं त्रिविध समीर बहै, जैसी रुचि जिहिं काल।
मधुर-मधुर कल कोकिला, कूजत मोर मराल।।18।।

जिस समय श्री प्रिया प्रियतम की जैसी रुचि होती है, वैसी ही शीतल मंद सुगंधित पवन श्री वृंदावन में बहती है। कहीं महा मधुर स्वर में कोयल कूजती है तो कहीं मोर मराल आदि मधुर स्वर करते हैं।

मण्डित जमुना वारि यौं, राजति परम रसाल।
अति सुदेस सोभित मनौं, नील मनिन की माल।।19।।

नील कांति युक्त परम मधुर श्री यमुना जल श्री वृंदावन के चहुँ ओर ऐसे बहता हुआ सुशोभित होता है जैसे नील मणियों की माला।

विपिन धाम आनन्द कौ, चतुरई चित्रित ताहि।
मदन केलि सम्पति सदा, तिहि करि पूरन आहि।।20।।

श्री वृंदावनधाम सच्चिदानन्दमय है, जिसे स्वयं चतुराई ने ही सजाया संवारा है। श्री प्रिया लाल की रस केलि के अनुरुप एवं अनुकूल संपत्ति वहां सदा भरपूर है।

देवी वृन्दाविपिन की, वृन्दा सखी सरूप।
जिहिंविधि रुचि ह्वै दुहुँनि की, तिहिं विधि करत अनूप।।21।।

श्री वृंदावन की अधिष्ठात्री वृंदा देवी सखी स्वरूप में अवस्थित होकर जैसी युगल की रुचि होती है वैसी ही वृंदावन कुंजों की रचना करती रहती है।

छिन छिन बन की छवि नई, नवल युगल के हेत।
समुझि बात सब जीय की, सखि वृन्दा सुख देत।।22।।

युगल को प्रसन्न करने के हित प्रतिक्षण वृंदावन का नई–नई भाँति श्रृंगार करती है। उनके हृदय की रुचि भली–भाँति जान सेवा कर वृंदा सखी उन्हें सुख देती है।

गावत वृंदाविपिन गुन, नवल लाड़िलीलाल।
सुखद लता फल फूल द्रुम, अद्‌भुत परम रसाल।।23।।

जहां के लता, वृक्ष, पुष्प फल आदि विलक्षण हैं, अद्‌भुत सुखदायक हैं, सरस हैं, ऐसे वृंदावन के गुणों का स्वयं नवल किशोर लाड़िली लाल भी गान करते हैं।

उपमा वृंदाविपिन की, कहि धौं दीजै काहि।
अति अभूत अद्‌भुत सरस, श्री मुख बरनत ताहि।।24।।

स्वयं श्री युगल किशोर जिसकी महिमा का गान कर सुखी होते हैं। ऐसे अतुल्य, अनिर्वचनीय, रस स्वरुप श्री वृंदावन की समता किससे की जाए।

आदि अन्त जाकौ नहीं, नित्य सुखद बन आहि।
माया त्रिगुन प्रपंच की, पवन न परसत ताहि।।25।।

सदा सुख-वर्षणकारी अनादि अनंत इस श्री वृंदावन को त्रिगुण का प्रपंच (माया) स्पर्श भी नहीं कर सकता।

वृन्दाविपिन सुहावनौं, रहत एक रस नित्त।
प्रेम सुरंग रँगे तहाँ, एक प्रान द्वै मित्त।।26।।

यह मन भावन श्री वृंदावन अखंड आनन्दमय है। जहां अनुराग रंग में रंगे एक प्राण दो मित्र प्रेम क्रीड़ा परायण रहते हैं।

अति सुरूप सुकुवाँर तन, नव किसोर सुखरासि।
हरत प्रान सब सखिनि के, करत मन्द मृदु हासि।।27।।

जहां परम सुन्दर, अनन्त सुख, रुप, रस की निधि सुकुमार युगल अपनी मृदु मनोहर मुस्कान से सब सखियों को मोहित करते हैं।

न्यारौ है सब लोक तें, वृन्दावन निज गेह।
खेलत लाड़िली लाल जहाँ, भींजे सरस सनेह।।28।।

श्री राधामाधव युगल का निज गृह स्वरुप यह श्री वृंदावन सब लोकों से न्यारा है, सर्वोपरि है, जहां युगल सहज प्रेम में मत्त सतत विहार करते हैं।

गौर-स्याम तन मन रँगे, प्रेम स्वाद रस सार।
निकसत नहिं तिहिं ऐंन ते, अटके सरस बिहार।।29।।

सर्वरसों के सार स्वरुप प्रेम के आस्वादन में ही जिनके तन मन रंग रहे हैं, ऐसे गौर स्याम किसी अद्‌भुत प्रेम खेल को ही सदा खेलते हुए श्री वृंदावन से बाहर नहीं निकलते।

बन है बाग सुहाग कौ, राख्यौ रस में पागि।
रूप-रंग के फूल दोउ, प्रीति लता रहे लागि।।30।।

परम सौभाग्य स्वरुप इस परम रसमय वृंदावन की माधुरी ने प्रीति लता पर लगे रुप और रंग के दो पुष्पों (श्री श्यामा-श्याम) को भी रस

मत्त कर रखा है।

मदन सुधा के रस भरे, फूलि रहे दिन रैंन।
चहुँदिसि भ्रमत न तजत छिन, भृंग सखिनि के नैंन।।13।।

यह रुप और रंग के मूर्त रुप दो पुष्प (श्री श्यामा-श्याम) प्रेम सुधा रस से भरे दिन रैन प्रफुल्लित ही रहते हैं एवं सखियों के नैन रुपी भ्रमर इन पर सदा मंडराते हुए रुप माधुरी का सतत पान करते हैं।

कानन में रहे झलकि कैं, आनन विवि विधु काँति।
सहज चकोरी सखिनि की, अखियाँ निरखि सिराँति।।32।।

श्री वृंदावन में हित युगल के मुख चन्द्र की कांति झिलमिलाती ही रहती है जिसे सहज स्नेह मूर्ति सखियां चकोर की भांति निरखि कर अपने मन प्राण शीतल करती है।

ऐसे रस में दिन मगन, नहिं जानत निसि भोर।
वृंदावन में प्रेम की, नदी बहै चहुँ ओर।।33।।

इस प्रकार समस्त हित रसिक परिकर इस अद्भुत प्रेमानन्द में मग्न रहता हुआ काल की सीमा से परे रहता है और ऐसा लगता है मानो श्री वृंदावन में चारों ओर प्रेम सुधा धारा ही प्रवाहित हो रही है।

महिमा वृन्दा विपिन की, कैसे कै कहि जाय।
ऐसे रसिक किशोर दोऊ, जामें रहे लुभाय।।34।।

परम रसिक शिरमौर श्रीराधामाधव युगल भी जिसकी माधुरी के लोभी है, ऐसे विलक्षण वृंदावन की महिमा कहना कैसे संभव है।

विपिन अलौकिक लोक में, अति अभूत रसकन्द।
नव किसोर इक वैस द्रुम, फूले रहत सुछन्द।।35।।

इस लोक में प्रकट होते हुए भी वृंदावन अलौकिक है, परमाद्भुत है, सरस है, जिसमें नवल किशोर दो ऐसे समवयस वृक्षों की भांति सुफलित है, जिनकी फूलनि सतत वर्द्धमान है।

पत्र-फूल-फल-लता प्रति, रहत रसिक पिय चाहि।
नवल कुँवरि दृग छटा जल, तिहि करि सींचे आहि।।36।।

वृंदावन के पत्र- पुष्प, फल, लता आदि को रसिक सिरमौर प्रियतम निहारते ही रहते हैं क्योंकि इन्हें किशोरी राधिका ने अपने स्नेह जल पूरित दृष्टिपात से सींचा है।

कुँवरि चरन अंकित धरनि, देखत जिहि-जिहि ठौर।
प्रिया चरन रज जानि कै, लुठत रसिक सिरमौर।।37।।

जहाँ-जहाँ धरती पर प्रिया श्री राधा के श्री चरणों के चिन्ह् प्रियतम देखते हैं, वहीं प्राण प्रिया की चरण धूलि जान भाव विह्वल होकर लोटने लगते हैं।

वृंदावन प्यारौ अधिक, यातें प्रेम अपार।
जामें खेलति लाड़िली, सर्वसु प्रान अधार।।38।।

प्रियतम का श्री वृंदावन में अपार प्रेम है, यह प्रीतम को प्राणाधिक प्रिय है क्योंकि इसमें उनकी प्राणाधार, जीवन धन प्रिया श्री राधा सदा क्रीड़ा करती है।

सबै सखी सब सौंज लै, रँगी जुगल ध्रुव रंग।
समै-समै की जानि रुचि, लियै रहति हैं संग।।39।।

युगल के अविचल प्रेम रंग में रंगी सखियां समय-समय की रुचिनुसार सेवा की सब सामग्री लिये निरन्तर युगल के संग बनी रहती हैं।

वृंदावन वैभव जितौ, तितौ कह्यौ नहिं जात।
देखत सम्पति विपिन की, कमला हू ललचात।।40।।

श्री वृंदावन की संपत्ति, रस वैभव, जिसे देखकर लक्ष्मी भी ललचा जाती है, वाणी द्वारा उसे कहना असम्भव है।

वृंदावन की लता सम, कोटि कल्पतरु नाहिं।
रज की तुल बैकुंठ नहिं, और लोक किहि माहिं।।41।।

करोड़ों कल्पवृक्ष वृंदावन की एक लता की समता नहीं कर सकते। अरे, जहाँ की रज के तुल्य बैकुण्ठ भी नहीं हैं तो अन्य लोकों की चर्चा ही क्या करना?

श्रीपति श्रीमुख कमल कह्यौ, नारद सौं समुझाई।
वृन्दावन रस सबनि तें, राख्यौ दूरि दुराइ।।42।।

रमाकांत भगवान नारायण ने श्री नारद जी से स्वयं कहा है कि मैंने श्री वृंदावन रस सबसे छिपाकर रखा है। यह रस परम रहस्य है।

अंस - कला औतार जे, ते सेवत हैं ताहि।
ऐसे वृन्दाविपिन कौं, मन-वच कै अवगाहि।।43।।

प्रभु के जितने अंश कला अवतार हैं, सब श्री वृंदावन धाम का ही इष्ट भाव से सेवन भजन करते हैं। ऐसे अनन्त महिमावंत श्री वृंदावन का ही सर्वतोभावेन सेवन करना चाहिए।

सिव-विधि-उद्धव सबनि कै, यह आसा रहै चित्त।
गुल्म लता है सिर धरैं, वृंदावन रज नित्त।।44।।

शिव, ब्रह्मा, उद्धव आदि के मन में यही आशा रहती है कि हम श्री वृंदावन की कोई लता या वृक्ष होकर श्री वृंदावन रज को नित्य शिरोधार्य कर सकें।

चतुरानन देख्यौ कछुक, वृंदाविपिन प्रभाव।
द्रुम-द्रुम प्रति अरु लता प्रति, औरे बन्यौ बनाव।।45।।

ब्रह्मा जी ने किंचित श्री वृंदावन के अद्‌भुत प्रभाव का अनुभव किया और पाया कि यहां तो तरु लता की रचना किसी और ही भाँति की है।

आप सहित सब चतुर्भुज, सब ठाँ रह्यौ निहारि।
प्रभुता अपनी भूलि गयौ, तन मन के रह्यौ हारि।।46।।

ब्रह्मा ने स्वयं सहित, सब ओर जब श्री वृंदावन को निहारा तो सबको ही चतुर्भुज रुप पाया। यहां का वैभव देखकर अपनी प्रभुता तो सर्वथा भूल ही गया, गति मति भी थकित हो गई।

लोक चतुर्दश ठकुरई, सम्पति सकल समेत।
सब तजि बसि वृन्दाविपिन, रसिकनि कौ रस खेत।।47।।

अत: यदि एक ओर चौदह भुवनों का वैभव, संपत्ति आदि प्राप्त होता हो तो भी उसे त्याग रसिकों के रस क्षेत्र श्री वृंदावन में ही बसना चाहिए।

सकहि तौ वृंदापिपिन बसि, छिन-छिन आयु बिहात।
ऐसौ समै न पाइहै, भली बनी है बात।।48।।

प्रति क्षण आयु क्षीण हो रही है, अब तो सुंदर सुयोग बना है। अत: कर सको तो श्री वृंदावन वास करो, फिर ऐसा संयोग नहीं बनेगा।

छाँड़ि स्वाद सुख देह के, और जगत की लाज।
मनहिं मारि तन हारि कै, वृंदावन में गाज।।49।।

अत: लोक लाज, देह के सुख स्वादादि का त्याग कर और तन मन से दीन हो वृंदावन में निर्भय होकर रह।

वृन्दावन के बसत्त ही, अन्तर जो करै आनि।
तिहि सम सत्रु न और कोऊ, मन बच कै यह जानि।।50।।

दृढ़तापूर्वक यह जान लो, मान लो कि वृंदावन वास में जो आकर बाधा डाले उसके समान दूसरा कोई शत्रु नहीं है।

वृंदावन के वास कौ, जिनकै नाहिं हुलास।
माता-मित्र-सुतादि-तिय, तजि ध्रुव तिनकौ पास।।51।।

श्री वृंदावन वास के लिए जिनके मन में उत्साह उल्लास नही है वे चाहे माता-पिता, पुत्र-पत्नी आदि परम स्नेही क्यों न हो, उनका सामीप्य त्याग दो।

और देस के बसत ही, अधिक भजन जो होय।
इहि सम नहिं पूजत तऊ, वृन्दावन रहै सोय।।52।।

अन्य देशों में निवास करते हुए चाहे विशाल भजन होता हो परन्तु वह वृंदावन में सोते रहने के समान भी नहीं है।

वृन्दावन में जो कबहूँ, भजन कछू नहिं होय।
रज तौ उड़ि लागै तनहिं, पीवै जमुना तोय।।53।।

श्री वृंदावन में वास करते हुए यदि कुछ भी भजन नहीं होगा तो भी

देव मुनि दुर्लभ श्री वृंदावन रज तो उड़कर देह को लगेगी। पीने को परम पावन श्री यमुना जल तो मिलेगा ही।

वृन्दाविपिन प्रभाव सुनि, अपनौ ही गुन देत।
जैसे बालक मलिन कौं, मात गोद भर लेत।।54।।

इस वृंदावन का अद्भुत प्रभाव सुनो। यह मलिन जीव को भी युगल प्रेम स्वरुप अपना गुण बिना विचारे प्रदान करता है। जैसे मैले-कुचैले बालक को भी वात्सल्यमयी माता स्नेहवश गोद में भर लेती है।

और ठौर जो जतन करै, होत भजन तऊ नाहिं।
ह्याँ फिरै स्वारथ आपने, भजन गहे फिरै बाँहि।।55।।

श्री वृंदावन से अन्यत्र बहुत प्रयत्न करने पर भी भजन नहीं होता। पर यहां कोई निज स्वार्थ वश भी विचरण करे तो भजन स्वयं उसे पकड़े रहता है।

और देस के बसत ही, घटत भजन की बात।
वृन्दावन में स्वारथौ, उलटि भजन ह्वै जात।।56।।

अन्यत्र कहीं बसते ही भजन का उत्साह उल्लास घट जाता है और वृन्दावन की महिमा देखो कि यहां स्वार्थ से की गई क्रिया भी भजन स्वरुप हो जाती है।

यद्यपि सब औगुन भरयौ, तदपि करत तुव ईठ।
हितमय वृन्दाविपिन कौं, कैसे दीजै पीठ।।57।।

यद्यपि मैं सब अवगुणों का भण्डार हूँ, फिर भी हे हितस्वरुप वृंदावन! आपकी इच्छा करता हूँ। आपके स्वभाव को देखते हुए कैसे आपका त्याग कर दूँ।

वृंदावन तें अनत ही, जेतिक द्यौस बिहात।
ते दिन लेखे जिनि लिखौ, वृथा अकारथ जात।।58।।

वृंदावन से अन्यत्र जितने भी दिन बीतें उन्हें गिनना ही नहीं चाहिए क्योंकि वह तो सर्वथा निष्फल ही है।

भजन रसमई विपिन धर, समुझि बसै जो कोई।
प्रेम-बीज तिहिं खेत तें, तब ही अंकुर होई।।59।।

श्री वृंदावन की भूमि भजन रस युक्त है, ऐसा समझ कर जो यहाँ बसता है उसके हृदय में प्रेम बीज निश्चित रुप से अंकुरित होता है।

यद्यपि धावत विषै कौं, भजन गहत बिच पानि।
ऐसे वृन्दाविपिन की, सरन गही ध्रुव आनि।।60।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने ऐसे वृंदावन की शरण ली है जहां चंचल मन यदि विषयों की ओर दौड़ता भी है तो भी भजन बीच में ही हाथ पकड़ सँभाल लेता है अर्थात् रक्षा करता है।

बसिबौ वृन्दाविपिन कौ, जिहि तिहि विधि दृढ़ होई।
नहिं चूकै ऐसौ समौ, जतन कीजिए सोई।।61।।

अतः श्री वृंदावन वास जैसे-तैसे भी दृढ़ हो, निश्चित हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। यह अवसर खोना नहीं चाहिए।

कहँ तू कहँ वृन्दाविपिन, आनि बन्यौ भल बान।
यहै बात जिय समुझि कै, अपनौ छाँड़ सयान।।62।।

हे मन, कहाँ विषय वासित तू और कहाँ परम सच्चिदानन्दघन वृंदावन। हित कृपा से ऐसा सुन्दर सुयोग बना है। यह बात अच्छी तरह समझ कर अपनी चतुराई छोड़ दे और वृंदावन का सेवन कर।

छिन भंगुर तन जात है, छाँड़हि विषै अलोल।

कौड़ी बदले लेहि तू, अद्‌भुत रतन अमोल।।63।।

क्षण भंगुर यह देह काल के गाल में पड़ी है। अत: विषयों का लोभ त्याग और विषय सुख रुपी कौड़ी को छोड़, और श्री वृंदावन रस रुपी अनमोल रत्न प्राप्त कर।

कोटि-कोटि हीरा रतन, अरु मनि विविध अनेक।

मिथ्या लालच छाँड़ि कै, गहि वृन्दावन एक।।64।।

करोड़ों रत्नादिक, विविध मणि रुप जड़ सम्पत्ति का झूठा लोभ त्याग एक श्री वृंदावन को ग्रहण कर।

नहिं सो माता पिता नहिं, मित्र पुत्र कोउ नाहिं।

इनमें जो अन्तर करै, बसत वृन्दावन माँहि।।65।।

वह माता-पिता, मित्र-पुत्र स्वप्न में भी अपने नहीं हैं जो वृंदावन के वास में व्यवधान डालते हैं।

नाते जेते जगत के, ते सब मिथ्या मान।

सत्य नित्य आनन्द मय, वृंदावन पहिचान।।66।।

जगत के जितने भी सम्बन्ध हैं, सबको मिथ्या मान और सच्चिदानन्दमय श्री वृंदावन को ही निज सर्वसु स्वरुप पहिचान।

बसिकै वृन्दाविपिन में, ऐसी मन में राख।

प्रान तजौं बन ना तजौं, कहौ बात कोऊ लाख।।67।।

श्री वृंदावन में वास कर यह धारणा मन में दृढ़ कर लो कि चाहे कोई लाख प्रलोभन दे, मैं प्राण तो त्यागूंगा पर श्री वृंदावन को नहीं।

चलत फिरत सुनियत यहै, (श्री) राधावल्लभलाल।
ऐसे वृन्दाविपिन में, बसत रहौ सब काल।।68।।

जहां श्री राधावल्लभलाल का नामामृत सहज ही चलते-फिरते श्रवण पुटों में पड़ता रहता है। ऐसे मधुर वृंदावन में सदा वास करना चाहिए।

बसिबौ वृंदाविपिन कौ, यह मन में धरि लेहु।
कीजै ऐसौ नेम दृढ़, या रज में परै देह।।69।।

वृंदावन वास की आशा मन में दृढ़ करके धारण कर लो। ऐसा सुदृढ़ व्रत लो कि श्री वृंदावन की रज में ही देह पात हो।

खण्ड-खण्ड ह्वै जाइ तन, अंग-अंग सत टूक।
वृंदावन नहिं छाँड़िये, छाँड़िबौ है बड़ चूक।।70।।

चाहे यह शरीर टुकड़े-टुकड़े हो जाए। एक-एक अंग के सौ-सौ टुकड़े हो जाएं। पर वृंदावन मत छोड़ना। क्योंकि वृंदावन का त्याग ही सबसे भारी भूल होगी।

पटतर वृंदाविपिन की, कहिं धौं दीजै काहि।
जेहि बन की ध्रुव रैनु में, मरिबौउ मंगल आहि।।71।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, वृंदावन की समता किससे की जाए जिसकी रज में मृत्यु भी मंगलमयी है।

वृंदावन के गुनन सुनि, हित सों रज में लोट।
जेहि सुख कौ पूजत नहीं, मुक्ति आदि सत कोट।।72।।

श्री वृंदावन के गुण श्रवण कर, प्रेम भाव पूर्वक यहां की रज में लोटो। इस सुख की बराबरी अनंत मुक्ति सुख भी नहीं कर सकते।

सुरपति-पसुपति-प्रजापति, रहे भूल तेहि ठौर।
वृंदावन वैभव कहौ, कौन जानिहै और।।73।।

स्वयं ब्रह्मा, शिव इन्द्रादिक भी जहां का वैभव देख बौरा जाते हैं उस वृंदावन की महिमा, वहां का रस विभु और कौन जान सकता है।

यद्यपि राजत अवनि पर, सबते ऊँचौ आहि।
ताकी सम कहिये कहा, श्रीपति बंदत ताहि।।74।।

धरा धाम पर विराजमान होते हुए भी श्री वृंदावन सर्वोपरि है, जिसकी वन्दना स्वयं लक्ष्मी पति करते हैं, उसके समान और कौन हो सकता है।

वृंदावन वृंदाविपिन, वृंदा कानन ऐन।
छिन-छिन रसना रटौ कर, वृंदावन सुख दैन।।75।।

हे जिह्वा तू हर क्षण ''वृंदावन, वृंदाविपिन, वृंदाकानन, सुखद श्री धाम, श्री वन'' इन्हीं परम मधुर नामों को रट।

वृंदावन आनन्द घन, तो तन नश्वर आहि।
पशु ज्यों खोवत विषै रस, काहि न चिंतत ताहि।।76।।

तेरा यह तन क्षण भंगुर है। पशु की भांति विषय भोग में इसे खो रहा है। आनन्द घन श्री वृन्दावन का चिंतवन क्यों नहीं करता।

वृन्दावन वृन्दा कहत, दुरित वृन्द दुरि जाहिं।
नेह बेलि रस भजन की, तब उपजै मन माहिं।।77।।

वृन्दावन। अरे आधा नाम वृन्दा कहते ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और निर्मल चित्त में रस भजन की प्रेम लता उत्पन्न हो जाती है।

वृन्दावन श्रवनन सुनहि, वृन्दावन कौ गान।
मन वच कै अति हेत सौं, वृन्दावन उर आन।।78।।

अत: कानों से श्री वृन्दावन की महिमा सुन। जिह्वा से श्री वृन्दावन की महिमा का गान कर। और प्रीति पूर्वक श्री वृन्दावन को हृदय में धारण कर।

वृन्दावन कौ नाम रट, वृन्दावन कौं देखि।
वृन्दावन सौं प्रीत कर, वृन्दावन उर लेखि।।79।।

श्री वृन्दावन का नाम रट, श्री वृन्दावन का दर्शन कर, इसी वृन्दावन से स्नेह कर और हृदय में श्री वृन्दावन को ही बसा।

वृन्दाविपिन प्रनाम करि, वृन्दावन सुख खान।
जो चाहत विश्राम ध्रुव, वृन्दावन पहिचान।।80।।

श्रीध्रुवदास जी कहते हैं सर्व सुखों की खान श्री वृन्दावन की शरण पकड़ इसी की वंदना कर। श्री वृन्दावन को पहचान तभी विश्राम पाएगा।

तजि कै वृन्दाविपिन कौं, और तीर्थ जे जात।
छाँड़ि विमल चिंतामणी, कौड़ी कौं ललचात।।81।।

जो श्री वृन्दावन को छोड़ स्वार्थ सिद्धि के लिए अन्यान्य तीर्थों में भटकते हैं वह मूढ़ मानो निर्मल चिंतामणि को त्याग कौड़ी के लिए ललचाते हैं।

पाइ रतन चीन्हौं नहीं, दीन्हों कर तें डार।
यह माया श्री कृष्ण की, मौह्यौ सब संसार।।82।।

मनुष्य देह जैसा रत्न पाकर भी तू इसे व्यर्थ खो रहा है, अपने ही हाथ से फेंक रहा है। अरे श्री कृष्ण की इसी माया ने तो सारे संसार को मोहित कर रखा है।

प्रगट जगत में जगमगै, वृन्दाविपिन अनूप।
नैन अछत दीसत नहीं, यह माया कौ रूप।।83।।

संसार में प्रकट रुप से अनुपम वृन्दावन झिलमिला रहा है, सुशोभित हो रहा है। फिर भी जीव उस रस स्वरुप का अनुभव नहीं कर पाता यह भी माया का ही रुप है।

वृन्दावन कौ जस अमल, जिहि पुरान में नाहिं।
ताकी बानी परौ जिनि, कबहूँ श्रवनन माहिं।।84।।

श्री वृन्दावन का त्रिभुवन पावन यश जिस पुराण में नहीं है, उसकी बात कभी मेरे कानों में न पड़े।

वन्दावन कौ जस सुनत, जिनकै नाहिं हुलास।
तिनकौ परस न कीजिये, तजि ध्रुव तिनकौ पास।।85।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं, श्री वृन्दावन की महिमा सुन कर के जिन्हें उत्साह नहीं होता, ह्रदय हर्षित नहीं होता, उनका स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। उनका संग त्याग ही देना चाहिये।

भुवन चतुर्दश आदि दै, ह्वै है सबकौ नास।
इक छत वृन्दाविपिन घन, सुख कौ सहज निवास।।86।।

चौदह भुवन पर्यन्त सब नाशवान है। परन्तु यह एक मात्र श्री वृन्दावन धाम सहज सुख धाम है, अविनाशी है।

वृन्दावन इह विधि बसै, तजि कै सब अभिमान।
तृण ते नीचौ आप कौं, जानै सोई जान।।87।।

जो स्वयं को तिनके से भी नीचा मान, सब प्रकार के अहंकार का त्याग कर श्री वृन्दावन में बसता है वही परम लाभ प्राप्त कर पाता है।

कोमल चित्त सब सौं मिलै, कबहूँ कठोर न होइ।
निस्प्रेही निर्वैरता, ताकौ शत्रु न कोइ।।88।।

जो सब प्रकार की इच्छा एवं राग-द्वेष से रहित है उसका कहीं कोई शत्रु नहीं है। इसी भाव से वृन्दावन में वास करे, सबसे विनीत हो कर मिले। चित्त में कठोरता न लावे।

दूजे - तीजे जो जुरै, साक-पत्र कछु आय।
ताही सों संतोष करि, रहै अधिक सुख पाय।।89।।

दूसरे तीसरे दिन अयाचित भाव से जो शाक पत्रादि प्राप्त हो जाए उसी में संतोष मान, निश्चिंत हो कर सुख से रहे।

देह स्वाद छुटि जाहिं सब, कछु होइ छीन सरीर।
प्रेम रंग उर में बढ़ै, बिहरै जमुना तीर।।90।।

देह के सुख स्वाद विस्मृत हो जाएँ, तन कुछ क्षीण हो जाए, परन्तु हृदय में प्रेम रंग प्रवृद्धमान हो, ऐसी अवस्था में यमुना तट पर विचरण करता रहे।

जुगल रूप की झलक उर, नैननिं रहै झलकाइ।
ऐसे सुख के रंग में, राखै मनहिं रँगाइ।।91।।

श्री श्यामा श्याम के दिव्यातिमधुर रूप की झलक नैनों में हो और इसी सुख के रंग में मन भी रंगा रहे।

आवै छबि की झलक उर, झलकै नैनन वारि।
चिंतत स्यामल-गौर तन, सकहि न तनहिं संभारि।।92।।

हृदय में गौर स्याम बसते हों, नैनों से प्रेमाश्रु छलकते हों, परम प्रेमास्पद श्री राधावल्लभलाल का स्मरण करते-करते तन की भी सुधि ना रहे।

जीरन पट अति दीन लट, हिये सरस अनुराग।
विवस सघन बन में फिरै, गावत युगल सुहाग।।93।।

चाहे तन पर फटे पुराने वस्त्र हो, देह क्षीण हो, सर्व विधि दीन हो परन्तु हृदय युगल प्रेम रस से सरोबार हो और इसी प्रेमाधिक्य वश वृन्दावन की करील कुंजों में युगल यश गान करता हुआ विचरण करे।

रसमय देखत फिरै बन, नैनन बन रहै आइ।
कहुँ-कहुँ आनँद रंग भरि, परै धरनि थहराइ।।94।।

रसिक उपासक श्री वृन्दावन को रस रुप देखते हुए विचरण करे, नैनों में बन की छवि बसी हो और कभी-कभी प्रेमावेशवश पृथ्वी पर गिर पड़े।

ऐसी गति ह्वै है कबहुं, मुख निसरत नहिं बैन।
देखि-देखि वृन्दाविपिन, भरि-भरि ढ़ारै नैन।।95।।

श्री वृन्दावन की शोभा देख-देख नैनों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे हों, प्रेमाधिक्य के कारण मुख से स्वर न निंकले। ऐसी अद्‌भुत दशा मेरी कब होगी ?

वृन्दावन तरु-तरु तरे, ढरै नैन सुख नीर।
चिंतत फिरै आबेस बस, स्यामल-गौर सरीर।।96।।

श्री वृन्दावन के वृक्षों की छाँह तले प्राण धन जीवन सर्वस्व गौर स्याम का चिंतन करता फिरे और नैनों से प्रेमाश्रु ढ़रते हों।

परम सच्चिदानंद घन, वृन्दाविपिन सुदेस।
जामें कबहूँ होत नहिं, माया काल प्रवेस।।97।।

यह सुन्दरता की सींव वृन्दावन परम सच्चिदानन्दघन स्वरुप हैं। जिसमें कभी माया काल का प्रवेश नहीं होता।

सारद जो सत कोटि मिलि, कलपन करैं विचार।
वृन्दावन सुख रंग कौ, कबहुँ न पावैं पार।।98।।

यदि कोटि-कोटि सरस्वती कल्पों तक विचार करें तब भी श्री वृन्दावन की सुख संपत्ति का पार नहीं पा सकतीं।

वृन्दावन आनन्द घन, सब तें उत्तम आहि।
मोते नीच न और कोऊ, कैसे पैहों ताहि।।99।।

यह श्री वृन्दावन परमानन्द स्वरुप, सर्वोपरि, सर्वोत्कृष्ट है और इधर मैं पतितों का सिरमौर कैसे इसे प्राप्त कर सकता हूँ।

इत बौना आकाश फल, चाहत है मन माहिं।
ताकौ एक कृपा बिना, और जतन कछु नाहिं।।100।।

यह तो ऐसा ही है जैसे एक बौना व्यक्ति आकाश में लगे फल की आशा करे। अत: एक मात्र कुंवरि श्री राधा की कृपा के बिना और कोई भी उपाय नहीं है।

कुँवरि किशोरी नाम सौं, उपज्यौ दृढ़ विस्वास।
करुणानिधि मृदु चित्त अति, तातें बढ़ी जिय आस।।101।।

परम उदार श्री राधा के नाम का सुदृढ़ विश्वास मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ है और उनकी करुणा एवं हृदय की कोमलता का विचार करके हृदय में आशा बढ़ चली है।

जिनकौ वृन्दाविपिन है, कृपा तिनहि की होइ।
वृन्दावन में तबहि तौ, रहन पाइ है सोइ।।102।।

श्री वृन्दावन जिनका धाम है उन्हीं की कृपा बल से कोई यहाँ वास कर सकता है अन्यथा नहीं।

वृन्दावन सत रतन की, माला गुही बनाइ।
भाल भाग जाके लिखी, सोई पहिरै आइ।।103।।

श्रीध्रुवदास जी कहते हैं कि मैंने श्री वृन्दावन यशरुपी सौ रत्नों की माला गूंथ कर बनाई है। जिसके मस्तक पर इसे धारण करने का सौभाग्य संयोग लिखा होगा सोई इसे धारण करेगा।

वृन्दावन सुख रंग की, आशा जो चित्त होइ।
निसि दिन कंठ धरे रहै, छिन नहिं टारै सोइ।।104।।

अत: जिसे श्री वृन्दावन के सुख रंग की इच्छा हो वह इस माला को सदा धारण किये रहे (अर्थात् सदा इसका गान करता रहे) एक क्षण के लिए भी इस रस का चिंतन न छोड़े।

वृन्दावन सत जो कहै, सुनि है नीकी भाँति।
निसिदिन तेहि उर जगमगै, वृन्दावन की काँति।।105।।

जो कोई इस वृन्दावन शत लीला को भाव से कहेगा अथवा सुनेगा उसके हृदय में वृन्दावन का प्रकाश सदा झिलमिलाता रहेगा।

वृन्दावन कौ चिंतवन, यहै दीप उर बार।
कोटि जन्म के तम अघहि, काटि करै उजियार।।106।।

हृदय में श्री वृन्दावन के चिंतन रुपी दीपक को प्रज्ज्वलित कर। यह कोटि जन्मों की अघ राशि रुप अंधकार का नाश कर प्रेम का प्रकाश करेगा।

बसिकै वृन्दाविपिन में, इतनौ बड़ौ सयान।
जुगल चरण के भजन बिन, निमिष न दीजै जान।।107।।

श्री वृन्दावन में वास करके सबसे बड़ी चतुराई यही है कि श्री युगल के चरण कमलों के सुमिरन के बिना एक क्षण भी न जाने पाये।

सहज विराजत एक रस, वृन्दावन निज धाम।
ललितादिक सखियन सहित, क्रीड़त स्यामास्याम।।108।।

श्रीराधावल्लभलाल का निज धाम श्री वृन्दावन अनादि काल से सहज शोभा सहित नित्य विद्यमान है जहाँ अपनी ललितादिक सखियों सहित युगल सदैव केलि परायण हैं।

प्रेम सिंधु वृन्दाविपिन, जाकौ अन्त न आदि।
जहाँ कलोलत रहत नित, युगल किशोर अनादि।।109।।

श्री वृन्दावन दिव्यप्रेम का अगाध अबाध सिंधु है जहाँ अनादि काल से श्रीराधावल्लभ युगल किशोर कल्लोल मान है।

न्यारौ चौदह लोक तें, वृन्दावन निज भौन।
तहाँ न कबहूँ लगत है, महा प्रलय की पौन।।110।।

युगल का निज धाम यह श्री वृन्दावन चौदह लोकों से विलक्षण है जिसे महाप्रलय की पवन स्पर्श करने में भी असमर्थ है।

महिमा वृन्दाविपिन की, कहि न सकत मम जीह।
जाके रसना द्वै सहस, तिनहूँ काढ़ी लीह।।111।।

मेरी जिह्वा तो श्री वृन्दावन की महिमा कहने में सर्वथा असमर्थ है। अरे दो सहस्र जिह्वाओं वाले शेष भी जिसे कहते कहते थकित हो जाते हैं, हार ही जाते हैं।

एती मति मोपै कहा, सोभा निधि बनराज।
ढीठौ कै कछु कहत हौं, आवत नहिं जिय लाज।।112।।

शोभा की सींवा श्री वृन्दावन की बात कहने के लिए मुझमें मति कहाँ से आयी ? फिर भी निर्लज्ज होकर, धृष्टतापूर्वक ही कुछ कहता हूँ।

मति प्रमान चाहत कह्यौ, सोऊ कहत लजात।
सिन्धु अगम जिहिं पार नहिं, कैसे सीप समात।।113।।

यथामति जो कुछ भी कहा, कहते-कहते संकुचित और लज्जित हो रहा हूँ। जिसका कोई पारावार नहीं ऐसा सिंधु भला सीप में कैसे समा जाए।

या मन के अवलंब हित, कीन्हौं आहि उपाय।
वृन्दावन रस कहन में, मति कबहूँ उरझाय।।114।।

मैंने तो अपने मन को कुछ आधार देने के लिए यह उपाय किया है जिससे श्री वृन्दावन रस का वर्णन करते हुए मन बुद्धि कभी इसमें लग जाएँ।

सोलह सै ध्रुव छयासिया, पून्यौ अगहन मास।
यह प्रबन्ध पूरन भयौ, सुनत होत अघ नास।।115।।

श्री ध्रुवदास जी कहते हैं संवत सौलह सौ छयासी की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को यह "वृन्दावन सत" नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ जिसके श्रवण मात्र से समस्त पापों का नाश हो जाता है।

दोहा वृन्दाविपिन के, इकसत षोड़स आहि।
जो चाहत रस रीति फल, छिन-छिन ध्रुव अवगाहि।।116।।

श्री वृन्दावन यश के यह एक सौ सोलह दोहे हैं। यदि आप रस रीति का फल चाहते हैं तो प्रतिक्षण इस वृन्दावन महिमा सुधा धारा में अवगाहन करते रहो।

।। इति श्री वृन्दावन सत लीला की जै जै श्री हित हरिवंश।।

"जा पर श्री हरिवंश कृपाला।
ता की बाँह गहैं दोऊ लाला।।"